भ्रष्टाचार पर उपभोक्ता फोरम सख्त

पासपोर्ट में देरी पर 50 हजार का जुर्माना

○जियाउद्दीन खान, एडवोकेट

लखनऊ। ढाई साल की देरी से पासपोर्ट जारी किए जाने के एक मामले में उपभोक्ता फोरम ने सख्त रुख अपनाया है। फोरम ने पासपोर्ट कार्यालय पर ५० हजार रुपये का हर्जाना ठोंका है। साथ ही विदेश मंत्रालय को आदेश की क पी भेजकर पूछा है कि पासपोर्ट कार्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं? फोरम ने मंत्रालय को इसके लिए जिम्मेदार अफसरों को चिह्नित कर उनपर कार्रवाई करने के साथ ही हर्जाने की रकम वसूलने को कहा है।

इंदिरानगर निवासी ६२ वर्षीय ंष्णकुमार वर्मा ने जिला उपभोक्ता फोरम (प्रथम) में शिकायत की थी कि १३ फरवरी २००६ को उन्होंने पासपोर्ट बनवाने के लिए आवेदन किया था। वर्मा यूके में रह रही तीन साल से बीमार बेटी की देखभाल के लिए वहां जाना चाहते थे। आवेदन में उन्होंने स्थायी पते में इंदिरानगर स्थित घर और अस्थायी पते में एचएएल अमेठी स्थित आवास का उल्लेख किया जहां वे कार्यरत थे। एलआईयू वेरिफिकेशन के लिए इंदिरानगर स्थित घर गई और वहां न मिलने पर स्थायी पते पर नहीं रहने की रिपोर्ट दे दी।

ढाई साल बाद पासपोर्ट बन पाने की वजह से बीमार बेटी से नहीं मिलने जा सका था पिता

विदेश मंत्रालय से पूछा- पासपोर्ट दफ्तरों से भ्रष्टाचार मिटाने के लिए क्या किया

कहा- मंत्रालय जिम्मेदार अफसर से करे हर्जाने की वसूली

वर्मा ने पासपोर्ट अ फिस में आरटीआई के जरिये जानकारी हासिल करनी चाही तो उन्हें सूचना नहीं दी गई। २७ दिसंबर २०१० को पत्र लिखकर उन्होंने रीजनल पासपोर्ट अ फिसर से शिकायत भी की। ३१ जनवरी २०१० को रिटायर होने के बाद वर्मा अपने स्थायी पते इंदिरानगर पर रहने लगे। इसकी जानकारी भी पासपोर्ट अ फिस को दे दी गई।

दलीलों को किया खारिज

कहा-कंज्यूमर प्रोटेक्शन एक्ट के दायरे में आती है सेवा

फोरम के अध्यक्ष विजय वर्मा ने पासपोर्ट अ फिसर की इस दलील को खारिज कर दिया कि मामला कंज्यूमर प्रोटेक्शन एक्ट के दायरे में नहीं आता। उन्होंने आदेश में कहा कि पासपोर्ट जारी न करके विभाग ने सेवा में कमी की। ऐसे में यह विवाद कंज्यूमर प्रोटेक्शन एक्ट के दायरे में आता है।

पुलिस वेरिफिकेशन में देरी कर रही थी तो आपने क्या किया?

पासपोर्ट अ फिसर ने दलील दी कि कानूनन पुलिस वेरिफिकेशन के बाद ही पासपोर्ट जारी किया जा सकता है। पुलिस के वेरिफिकेशन के समय आवेदक घर पर नहीं मिला। पुलिस ने अधूरी रिपोर्ट दी। उस रिपोर्ट को पुलिस को वापस भेजकर फिर से वेरिफिकेशन कराया गया। पुलिस की रिपोर्ट मिलने के बाद 26 अगस्त 2011 को पासपोर्ट जारी कर दिया गया था।

इस पर फोरम ने पासपोर्ट अ फिसर से सवाल किया कि पुलिस देरी कर रही थी तो आपने क्या किया?

गैरजिम्मेदाराना रहा अफसरों का रवैया

उपभोक्ता फोरम ने अपने आदेश में कहा कि जब शिकायतकर्ता अमेठी में अपनी सेवाएं एचएएल को दे रहा था तो वह कैसे इंदिरानगर स्थित स्थायी पते पर रह सकता था। पुलिस को स्थायी पता सही होने या नहीं होने पर अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए थी। पासपोर्ट जारी करने के लिए पुलिस से वेरिफिकेशन समय पर कराने में विभाग ने भी कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

अफसरों ने पूरे मामले को बेहद गैरजिम्मेदाराना तरीके से लिया। शिकायतकर्ता को अपनी बेटी से मिलने जाना था, पासपोर्ट नहीं मिलने से उसे मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ा।

फोरम ने आदेश में कहा कि पासपोर्ट अ फिस को 50 हजार रुपये हर्जाना और 2500 रुपये विधिक खर्च के लिए शिकायतकर्ता को चुकाने होंगे।

जांच आयोग अदालत नहीं -सुप्रीम कोर्ट

नई दिल्ली। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि अवमानना कार्यवाही में सत्य ही बचाव है और अब यह कानून स्थायी है।

मुख्य न्यायाधीश आरएम लोढ़ा की अध्यक्षता वाली पांच सदस्यीय संविधान पीठ ने कहा कि यदि अदालत दो बातों से संतुष्ट है तो वह बचाव के तौर पर सत्यता को अनुमति देगा। ये दो बातें हैं, एक इसका जनता के हित में होना और दूसरा बचाव का अनुरोध सही उद्देश्य के लिए किया गया हो। पीठ ने यह निष्कर्ष अवमानना कार्यवाही से निपटने के संदर्भ में १९७१ के कानून में २००६ में लाए गए संशोधन पर सुनवाई के दौरान निकाला। पीठ ने कहा कि बचाव के तौर पर सत्य की कानूनी स्थिति अब कानूनन स्थायी है। यह बात १९७१ एक्ट के सेक्शन १३ से पुष्टि होती है। संविधान पीठ में चीफ जस्टिस लोढ़ा के अलावा जस्टिस अनिल आर. दवे, जस्टिस एस.जे. मुखोपाध्याय, जस्टिस दीपक मिश्रा और जस्टिस शिवा कीर्ति सिंह भी शामिल हैं। पीठ ने कहा कि कुछ कॉमन कानून यह सुविधा उपलब्ध कराते हैं कि यदि कोई टिप्पणी जनता के फायदे के लिए है तो सच्चाई बचाव के तौर पर इस्तेमाल हो सकती है। सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था २४ साल पहले एक जांच आयोग के खिलाफ भाजपा नेता अरुण शौरी की टिप्पणियों पर अवमानना का मुकदमा चलाने संबंधी याचिका पर दी। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जांच आयोग अदालतें नहीं हैं, इसलिए इसकी अवमानना नहीं हो सकती है। चाहे इसके अध्यक्ष हाईकोर्ट या सुप्रीम कोर्ट के कार्यरत जज ही क्यों न हों।

लाइक्ली टू बी इन्फक्चुअस कहां से आया?

○डॉ. एस.के. शर्मा, एडवोकेट

उच्च न्यायालय लखनऊ पीठ में पिछले कई महीनों से, थोक के भाव फलहीन मुकदमे की श्रेणी में पुराने मुकदमें सूची बद्ध हो रहे हैं तथाऐसे सूची बद्ध मुकदमों को मा. न्यायालय, थोक के भाव निरस्त भी कर रहा है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सक्षमप्राधिकारी द्वारा इस आशय का कोई लिखित आदेश प्रचलित नहीं है, जो फलहीन मुकदमों की श्रेणी तय किये जाने हेतु दिशा निर्देश के तौर पर Codifie हों।

वर्षों से मुकदमें, मा0 उच्च न्यायालय के समक्ष, किसके—किसके द्वारा, किस स्तर के सहयोग से लम्बित रखे जाते हैं वो सर्वविदित है जो चर्चा का महत्वपूर्ण विषय आम जन के लिए हो सकता है तथा हो भी रहा है।

विधि विरुद्ध प्रशासनिक कार्यों पर रोक तथा अपने साथ हुए नाइंसाफी से त्रस्त होकर वादकारी संवैधानिक व्यवस्था के तहत (अनु0 226), उच्च न्यायालय में अपने साथ हुए नाइंसाफी के विरुद्ध, संवैधानिक उपचार प्राप्त करने आता है, परन्तु उच्च न्यायालय, वादकारियों के साथ, उससे बड़ा नाइंसाफी, वर्षों वर्षों तक मुकदमा निस्तारित न करके, अब उनके मुकदमों को फलहीन मुकदमा के श्रेणी में मनमानी तरीके से डालकर/रखकर निरस्त कर रहा है।

उच्च न्यायालय का यह कार्य अंसवैधानिक अविधिक, अव्यवहारिक होने के साथ—साथ घोर अमानवीय भी है। संवैधानिक व्यवस्था के विपरीत, वादकारियों को ऐसे न्यायिक आदेश से बलि का बकरा बनाया जा रहा है, जबकि वादकारी किसी भी कानून के तहत, इस अति गम्भीर हानि के लिए जिम्मेदार नहीं हैं।

वादकारी संवैधानिक व्यवस्था के तहत उच्च न्यायालय अपना उपचार कराने आता है, परन्तु उच्च न्यायालय, वादकारी को समय से उचपार न देकर, अन्त में बगैर इलाज के, मरने के लिए छोड़ रहा है।

अगर उच्च न्यायालय संवैधानिक उपचार समय से करने में असमर्थ है, तो संविधान उसे ऐसा कोई शक्ति नहीं देता है, कि वो, वादकारी को, विधिक उपचार के अभाव में अपना दम तोड़ने के लिए असहाय छोड़ दे।

विधि का यह प्रतिपादित सिद्धान्त है कि कोई भी संस्था चाहे कितनी बड़ी हो, उसे संवैधानिक व्यवस्था को नकारकर, मनमानी करने की छूट नहीं देता है।

संक्षेप में भारत का संविधान उच्च न्यायायलय को, यह छूट नहीं देता है कि वो मनमानी तरीके से मुकदमों का निस्तारण करते रहे तथा उपचार पाने के संवैधानिक गारंटी को, अनदेखा करते हुए न्यायिक निर्णय देते रहें। इसकी वजह से वाद के निस्तारण में देरी हो रही है क्योंकि इस हेडिंग में लगे वादों के लिए कि वे अभी फलहीन नहीं हुए है अलग से एप्लीकेशन फाइल करनी पड़ती है।

हद तो यह हो गयी है कि 2013 के केसेज इस लिस्ट में लगे रहे हैं और लगभग बीसों साल पुराने सामान्य में। इस हेडिंग में लगाने का क्राइट एरिया क्या है? क्योंकि हाई कोर्ट रूल्स में इसकी कोई व्यवस्था नहीं है।

राष्ट्रीय महिला आयोग-केंद्र ने किया नियुक्ति प्रक्रिया में बदलाव

वकील ही बनेंगी अध्यक्ष-सदस्य

नई दिल्ली। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति में एक बड़ा बदलाव कर दिया है। आयोग में अब केवल वही अध्यक्ष और सदस्य बन पाएंगी, जो वकालत के पेशे से जुड़ी हों। और तो और वकालत का अनुभव भी कम से कम १० साल का होना चाहिए। महिला और बाल विकास मंत्रालय के उच्च पदस्थ सूत्रों के मुताबिक बदलाव के पीछे मंत्री मेनका गांधी हैं। हालांकि, इस पर अंतिम मंजूरी प्रधानमंत्री कार्यालय से ली जाएगी।

मंत्रालय के मुताबिक अब तक ऐसी नियुक्तियां पूरी तरह राजनीतिक होती हैं। केंद्र में जिसकी सरकार होती है, वह अपने मनमाफिक महिला नेताओं को इन पदों पर बिठाती है। सामान्य तौर पर यही प्रक्रिया राष्ट्रीय आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और यहां तक कि राज्यपालों की नियुक्ति की के लिए होती है। अब तक आयोग के नोटिस और सम्मन को पुलिस अधिकारी से लेकर राजनेता या फिर आम आदमी बेहद सामान्य ढंग से लेते रहे हैं, क्योंकि उसके पास इससे ज्यादा अधिकार नहीं थे।

वैसे केंद्र सरकार के इस फैसले से उन महिलाओं के मंसूबे पर पानी फिर सकता है, जो कि केवल राजनीतिक रसूख के बल पर नई सरकार में महिला आयोग में इंट्री पाने की कोशिश कर रही हैं।